THE HINDU

Date: 13-03-26

Justice for all

The directives on NCERT show the Court as keen to stave off any criticism

Editorial

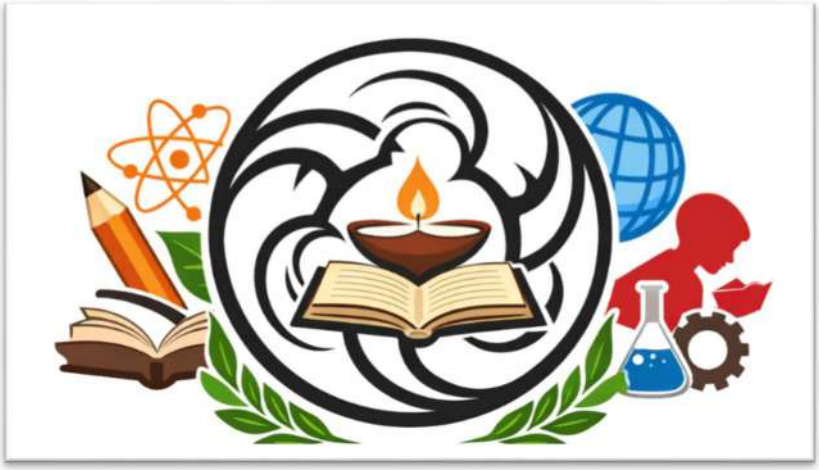

The Supreme Court of India's sense of hurt at references to judicial corruption in a National Council of Educational Research and Training (NCERT) textbook is in danger of resulting in a serious case of miscarriage of justice. According to the Court, the NCERT's textbook development team did not have "reasonable, informed knowledge about the Indian judiciary". The Court went on to direct that persons such as those in the team should not be associated in "any manner with preparation of school curriculum or finalisation of textbooks for the next generation of this country". This sweeping statement has cast a shadow over the entire exercise of textbook writing. While insisting on independent domain experts such as a senior judge to approve the chapters on judiciary before publication, the Court could have initiated a similar process for other chapters as well, especially for those dealing with history where the misrepresentation of facts is sometimes tinged with bigotry.

In the past, the Bharatiya Janata Party (BJP) and its allied organisations had critiqued Indian textbooks saying that they were Macaulay-an and created "westernised" minds that did not hold India's past, its traditions, and the Hindu religion as sacred. When the BJP came to power, it sought to redraft the textbooks along these lines. Now, references to Hindu rituals and beliefs are found across textbooks and subjects. For instance, a discussion on solar energy refers to the ritual of "arghyam", a Vedic salutation to the sun by pouring water. Geography is strictly science, but a geography chapter in a class seven textbook talks about a divine feminine presence pervading the Indian landmass, thereby making it sacred. The Court must apply the same yardsticks it used for the judiciary chapters to history chapters in the textbooks too. Part 1 of the same social science textbook for class eight describes Muslim rulers as uniformly and singularly cruel, despotic and repressive whereas Hindu kingdoms are portrayed as benign and as resisting Muslim rule. Objectivity is given short shrift, leading to genuine fears that the narrative is to instigate bigotry even though the class eight textbook includes a disclaimer that today's generation is not to be blamed for the 'sins' of the past. Textbook writing requires not just subject matter expertise but also skill that would genuinely kindle knowledge and inquiry as well as train minds towards valuing fairness, equality, peace and harmony. The language is important, so is the intent. Any selective targeting of chapters will only reinforce the perception that the judiciary is merely protecting itself. That, ultimately, would undermine any conception of justice.

Date: 13-03-26

संतुलन की मांग करता संसदीय प्रतिनिधित्व

राजीव शुक्ला, (लेखक राज्यसभा सदस्य हैं)

यह साल भारतीय राजनीति के लिए निर्णायक मोड़ साबित हो सकता है। इस वर्ष लोकसभा सीटों के पुनर्निर्धारण (डिलिमिटेशन) पर लगी संवैधानिक रोक समाप्त होने वाली है। यह देखने या सुनने में एक साधारण प्रक्रिया लग सकती है, लेकिन इसका गहरा असर देश की राजनीति, राज्यों की ताकत और संघीय ढांचे पर पड़ सकता है। असल सवाल यह है कि क्या संसद में प्रतिनिधित्व केवल जनसंख्या के आधार पर तय होना चाहिए? और अगर ऐसा हुआ तो क्या इससे कुछ राज्यों को नुकसान होगा?

संसद में जब भी संघीय ढांचे पर बहस के बिंदु आते हैं तो डा. आंबेडकर का भाषण अक्सर याद आता है, जिसमें उन्होंने राज्यों के अधिकारों को सर्वोपरि रखा था। लोकसभा सीटों का वर्तमान बंटवारा 1971 की जनगणना पर आधारित है और उसके बाद जनसंख्या के अनुसार सीटों को बदला नहीं गया। ऐसा इसलिए किया गया था, ताकि जो राज्य जनसंख्या नियंत्रण में सफल रहें, उन्हें राजनीतिक नुकसान न हो। उस समय यह सहमति बनी थी कि जनसंख्या नियंत्रण राष्ट्रीय लक्ष्य है, इसलिए जो राज्य इसे गंभीरता से लागू करेंगे, उन्हें दंडित नहीं किया जाएगा, लेकिन अब स्थिति बदल चुकी है।

हिंदी पट्टी के कई राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश और बिहार आदि की जनसंख्या तेजी से बढ़ी जबकि तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, आंध्र और तेलंगाना जैसे दक्षिणी राज्यों ने परिवार नियोजन, महिला शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं में निवेश कर जनसंख्या वृद्धि को काफी हद तक नियंत्रित किया। परिणामस्वरूप आज दक्षिण के कई राज्यों की जनसंख्या वृद्धि दर कम है, जबकि उत्तर के कुछ राज्यों में जनसंख्या बढ़ी है।

यदि 2026 के बाद सीटों का बंटवारा केवल जनसंख्या के आधार पर किया जाता है तो उत्तरी राज्यों की लोकसभा में सीटें बढ़ सकती हैं और दक्षिणी राज्यों का अनुपात घट सकता है। यही कारण है कि दक्षिण के कई नेता इसे लेकर चिंता जता रहे हैं। यह चिंता केवल राजनीतिक नहीं है, बल्कि भावनात्मक भी है। दक्षिण भारत के राज्यों का तर्क है कि उन्होंने राष्ट्रीय नीति के अनुरूप जनसंख्या नियंत्रण को अपनाया, शिक्षा और स्वास्थ्य पर काम किया और अपनी अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाया।

वे देश की जीडीपी में बड़ा योगदान देते हैं। वे पिछले दो-तीन वर्षों में कई बार आर्थिक न्याय की मांग रखते हुए आ रहे हैं। अब यदि उन्हें कम सीटें मिलती हैं, तो यह एक तरह से उनकी सफलता की सजा होगी। दूसरी ओर, उत्तर भारतीय नागरिक भी यह महसूस करते हैं कि उनके प्रतिनिधि बहुत बड़ी आबादी का प्रतिनिधित्व करते हैं। एक सांसद को लाखों से अधिक लोगों की समस्याओं से जूझना पड़ता है, जबकि कुछ अन्य राज्यों में एक सांसद कम आबादी का प्रतिनिधित्व करता है। ऐसे में 'एक व्यक्ति, एक वोट' के आधार पर सीटों का नया बंटवारा न्यायसंगत प्रतीत होता है।

यही इस पूरे विवाद का केंद्र है, जनसंख्या के आधार पर समान प्रतिनिधित्व बनाम राज्यों के संतुलित अधिकार। यदि केवल संख्या के आधार पर निर्णय लिया गया, तो संसद में शक्ति का संतुलन एक खास भौगोलिक क्षेत्र की ओर झुक सकता है। इससे राजनीतिक दलों की रणनीति भी बदल सकती है। संभव है कि कोई दल केवल कुछ बड़े जनसंख्या वाले राज्यों में अच्छा प्रदर्शन कर केंद्र में बहुमत हासिल कर ले। तब उसे देश के अन्य हिस्सों में व्यापक समर्थन जुटाने की उतनी आवश्यकता न रहे और इसका सबसे बड़ा असर संघीय ढांचे पर भी पड़ सकता है।

भारत एक संघीय व्यवस्था है, जहां केंद्र और राज्य दोनों की भूमिकाएं महत्वपूर्ण हैं। यदि राजनीतिक ताकत एक ही क्षेत्र में केंद्रित हो जाती है, तो वित्तीय फैसलों पर भी उसका असर दिख सकता है। पहले से ही वित्त आयोग राज्यों के बीच संसाधनों के बंटवारे को लेकर संतुलन बनाने की मुश्किल कोशिश करता है और फिर भी असमान वितरण जैसी समस्याएं सामने आती हैं। यदि राजनीतिक प्रतिनिधित्व में असंतुलन बढ़ा, तो संसाधनों के बंटवारे को लेकर भी असंतोष पैदा हो सकता है। इसलिए जरूरी है कि इस मुद्दे को 'उत्तर बनाम दक्षिण' के टकराव में न बदला जाए।

समाधान ऐसा होना चाहिए, जिसमें किसी राज्य को नुकसान न हो। एक रास्ता यह हो सकता है कि लोकसभा की कुल सीटों की संख्या बढ़ा दी जाए। इससे अधिक जनसंख्या वाले राज्यों को अतिरिक्त सीटें मिल सकती हैं, लेकिन किसी राज्य की मौजूदा सीटें कम न हों। इस तरह संतुलन बनाए रखने की कोशिश की जा सकती है। इसके अलावा राज्यसभा की भूमिका को भी मजबूत करके इस असमानता को दूर किया जा सकता है। राज्यसभा को राज्यों की आवाज माना जाता है, पर वित्त विधेयक जैसे मामलों में यह केवल लोकसभा की सेकेंडरी बाडी जैसी दिखती है।

यदि राज्यसभा को अधिक प्रभावी बनाया जाए जैसे कि राज्यों के मुद्दों पर लोकसभा से अधिक अधिकार या राज्यों के मामलों में पूर्ण वीटो का अधिकार तो राज्यसभा राज्यों के अधिकार के लिए लोकसभा में अधिक सीट होने के बाद भी अपने पक्ष से बचाव के लिए खड़ी होगी और छोटे या कम जनसंख्या वाले राज्यों को भी अपनी बात रखने का अवसर मिल सकता है। लोकसभा अगर भारत की जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करती है तो राज्यसभा भारत की विविधता का कवच बनकर उसे सुरक्षित रखेगी और भारत का संघीय ढांचा सुरक्षित रहेगा।

हम प्रतिनिधित्व को केवल जनसंख्या तक सीमित न रखें। शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तीकरण और सुशासन जैसे पहलुओं को भी राष्ट्रीय चर्चा में महत्व मिलना चाहिए। जो राज्य इन क्षेत्रों में बेहतर काम करते हैं, उन्हें नीति निर्माण में भी उचित सम्मान मिलना चाहिए। सरकार को केवल गणितीय आंकड़ों के आधार पर फैसला नहीं करना चाहिए, बल्कि देश की एकता और भावनात्मक संतुलन को ध्यान में रखना चाहिए। लोकतंत्र केवल बहुमत का शासन नहीं है, यह सभी हिस्सों को साथ लेकर चलने की व्यवस्था है। भारत की ताकत उसकी विविधता में है। इसलिए ऐसा समाधान खोजा जाए, जो उत्तर के मतदाता को न्याय दे और दक्षिण के नागरिक को सम्मान। भारत का भविष्य सभी राज्यों की साझा भागीदारी में है।

Date: 13-03-26

सरकार के हाथ मजबूत करे निजी क्षेत्र

प्रमथ राज सिन्हा, (लेखक अशोका यूनिवर्सिटी के चेयरपर्सन एवं बोर्ड आफ ट्रस्टी हैं)

जहां एक तरफ कई देशों में वृद्ध आबादी बढ़ती जा रही है और जापान तथा इटली जैसे देश घटती जन्म दर से जूझ रहे हैं, वहीं दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया में कामकाजी उम्र के लोगों की जनसंख्या बरकरार है। आज भारत में दो-तिहाई लोग 35 साल से कम उम्र के हैं। देश की सबसे बड़ी ताकत देश के युवा हैं। युवा संभावनाशील शक्ति बिहार, उत्तर प्रदेश, झारखंड और राजस्थान जैसे राज्यों में यह स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

जरूरत है इस ऊर्जा को सही दिशा देकर एक मजबूत आर्थिक ताकत में रूपांतरित किया जाए। वित्त वर्ष 2026-27 के लिए गत दिनों संसद में पेश केंद्रीय बजट में युवाओं को सिर्फ 'भविष्य' नहीं कहा गया, बल्कि उन्हें वर्तमान में 'भविष्य का निर्माणकर्ता' माना गया है। इन भविष्य के निर्माताओं को सफल बनाने के लिए जरूरी है कि उनके लिए अवसरों की ऐसी सीढ़ी तैयार की जाए, जिससे वे अपनी रुचियों और कौशल का सही उपयोग कर नई ऊंचाइयां छू सकें। युवा जनसांख्यिकी के लिए पढ़ाई और रोजगार का ऐसा परिवेश तैयार करना होगा, जो उन्हीं की तरह विविध, बहुआयामी और गतिशील हो।

जमीनी वास्तविकताओं और अंतर क्षेत्रीय जटिलताओं को समझते हुए सरकार ने बजट में प्रतिभाओं में निवेश को प्राथमिकता दी है। पिछले कुछ वर्षों में ऐसी योजनाएं शुरू की गईं, जिन्होंने चुनिंदा क्षेत्रों में प्रशिक्षण को उद्योग के साथ जोड़ा और इस साझेदारी से कौशल अंतर को पाटने की कोशिश की। बजट इन योजनाओं को और विस्तार तो देता ही है, साथ ही नए अवसरों की घोषणा भी करता है। भारत की विशिष्टताओं को ध्यान में रख कर देखें तो बजट युवा-केंद्रित प्राथमिकताओं को उकेरता है। भारत की डिजिटल क्षमता उसकी पहली बड़ी ताकत है। भारत तेजी से मोबाइल-आधारित क्रिएटर इकोनमी बन रहा है।

आज युवा सिर्फ कंटेंट देखना नहीं चाहते, वे कंटेंट बनाना भी चाहते हैं। डिजिटल क्षेत्र में प्रभाव बढ़ाने के लिए हमें डिजिटल माडल्स को सीखने पर जोर देना होगा। रचनात्मक क्षेत्रों में विकास को ध्यान में रख कर बजट में 15,000 स्कूलों और 500 कालेजों में एनीमेशन, विजुअल इफेक्ट्स, गेमिंग और कामिक्स के लिए कंटेंट क्रिएटर लैब बनाने का प्रस्ताव है। इन लैब्स के जरिये युवा तकनीक का बेहतर इस्तेमाल करना सीखेंगे जिससे उनकी रचनात्मक आकांक्षाओं को सही औपचारिक स्वरूप मिलेगा और वे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा करने लायक कौशल विकसित कर पाएंगे।

दूसरा अहम स्तंभ है उद्यमिता। भारत का स्टार्टअप इकोसिस्टम तेजी से छोटे शहरों और सुदूर क्षेत्रों तक विस्तार पा रहा है। कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालय के आवंटन में 62 प्रतिशत से अधिक की बढ़ोतरी इसका प्रमाण है कि सरकार भविष्य के लिए सही कौशल से लैस सक्रिय कार्यबल बनाने को लेकर गंभीर है। बजट में टियर-2 और टियर-3 शहरों में इकोनमिक रीजन विकसित करने की बात कही गई है। उद्यमिता और आर्थिक विकास को साथ जोड़ते हुए बात ऐसे शहरों की हो रही है, जहां रोजगार के विकल्पों के साथ-साथ बेहतर जीवन की आशा भी है। घर के पास अच्छे अवसर मिलने से बड़े शहरों की तरफ युवाओं का पलायन कम होगा और देश में संतुलित विकास हो सकेगा।

तीसरा और अत्यंत महत्वपूर्ण स्तंभ है हमारे उच्च शिक्षा संस्थान, जो देश के लिए एक सशक्त भविष्य की नींव रख सकते हैं और जिनकी भूमिका आने वाले दिनों में और भी महत्वपूर्ण हो जाएगी। एजुकेशन टू एंप्लायमेंट एंड एंटरप्राइज नामक एक स्थायी समिति बनाने का जो प्रस्ताव रखा गया है, उसका उद्देश्य है उच्च शिक्षा को रोजगार से जोड़ना, जिससे केवल डिग्री प्राप्त नहीं होगी, बल्कि काम करने का कौशल भी विकसित होगा। साथ ही पांच यूनिवर्सिटी टाउनशिप बनाने की योजना भी रखी गई है। ये टाउनशिप्स संपूर्ण शिक्षा का केंद्र होंगी, जिनमें विश्वविद्यालय, कालेज, शोध संस्थान और कौशल केंद्र, सबके लिए जगह होगी।

इन टाउनशिप्स का निर्माण औद्योगिक इलाकों के पास होगा। इससे पढ़ाई के उपरांत युवाओं को रोजगार भी निकट के इलाके में मिल सकेगा। महानगरों में हम इस तरह के प्रयोगों की सफलता पहले देख चुके हैं। अब हमें उन नए क्षेत्रों पर भी ध्यान देना है, जहां भारत विशेष क्षमता रखता है। इनमें चिकित्सा पर्यटन, आतिथ्य, खेल विज्ञान, सेमीकंडक्टर, फार्मा और डिजाइन जैसे रचनात्मक उद्योग शामिल हैं। अगर शिक्षा, कौशल और उद्योग के बीच बेहतर तालमेल बनाया जाए तो इन क्षेत्रों में तेजी से प्रगति की जा सकती है।

इस वर्ष का बजट क्षमता निर्माण, नई पहलों और बड़े पैमाने पर प्रतिभा विकास पर जोर देता है। इन पहलुओं को केंद्र में रख कर भारत जहां एक ओर वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बन सकता है, वहीं देश में समावेशी भागीदारी को बढ़ावा भी दे सकता है। युवा केंद्रित प्रगति के लिए कौशल, रोजगार और उच्च शिक्षा, सभी अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं और इस बात को केंद्रीय बजट ने स्वीकारा है। सरकार ने अपना दायित्व स्पष्ट कर दिया है। इसे साकार करने के लिए निजी संस्थाओं को भी कंधे से कंधा मिला कर काम करना होगा। शिक्षा और कौशल में प्रगति को अगर हम यूं ही अपनी योजनाओं के केंद्र में रखेंगे तो संभव है वर्ष 2026 भारत के भविष्य का निर्णायक वर्ष हो।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 13-03-26

हर घर जल

संपादकीय

केंद्रीय मंत्रिमंडल ने इस सप्ताह जल जीवन मिशन (जेजेएम) के पुनर्गठन और इसे 2028 तक आगे बढ़ाने की योजना को मंजूरी प्रदान की। रिपोर्टों के अनुसार, वर्ष 2019 में जल शक्ति मंत्रालय के तहत शुरू किए गए इस मिशन ने ग्रामीण क्षेत्रों में पाइप से पानी की पहुंच को उल्लेखनीय रूप से बढ़ाया है।

नल-जल कवरेज 3.23 करोड़ ग्रामीण परिवारों (कुल का लगभग 17 फीसदी) से बढ़कर आज लगभग 15.8 करोड़ परिवारों तक पहुंच गया है, जो राज्यों द्वारा पहचाने गए 19.36 करोड़ ग्रामीण घरों में से 81 फीसदी से अधिक को कवर करता है।

ऐसे में अगला चरण जिसे जेजेएम 2.0 कहा जा रहा है, एक स्वागत योग्य कदम है। इसमें लगभग 8.69 लाख करोड़ रुपये का विस्तारित परिव्यय होगा। इसमें केंद्रीय सहायता 3.59 लाख करोड़ रुपये होगी, जबकि 2019-20 में 2.08 लाख करोड़ रुपये की ही स्वीकृति दी गई थी।

बात सिर्फ धन की नहीं है, नए सिरे से तैयार डिजाइन इसे नागरिक-केंद्रित उपयोगिता-आधारित सेवा वितरण कार्यक्रम बनाता है। बदलावों में एक प्रस्तावित समान राष्ट्रीय डिजिटल ढांचा 'सुजलाम भारत' शामिल है, जो प्रत्येक गांव को एक विशिष्ट सेवा-क्षेत्र पहचान दस्तावेज या आईडी प्रदान करेगा और पूरी पेयजल आपूर्ति श्रृंखला को स्रोत से लेकर नल तक निर्धारित करेगा। इस एकीकृत निगरानी प्रणाली से पारदर्शिता और सेवा निगरानी में सुधार की उम्मीद है।

ग्राम पंचायतों और गांव की जल एवं स्वच्छता समितियों की मजबूत भूमिकाओं के माध्यम से अधिक जवाबदेही सुनिश्चित की जाएगी ताकि 'हर घर जल' की घोषणा के लिए पर्याप्त गांव-स्तरीय संचालन और रखरखाव तंत्र स्थापित हो सके। वहीं 'जल उत्सव' जैसी पहलें समुदाय की भागीदारी को गहरा करने, गांव की जल प्रणालियों की समीक्षा करने और पेयजल के लिए सामूहिक जिम्मेदारी को सुदृढ़ करने का प्रयास करती हैं।

मिशन के पहले चरण ने नल कनेक्शनों के तेजी से विस्तार को प्राथमिकता दी, लेकिन टिकाऊ सेवा के मामले में असमानता बनी हुई है। स्वतंत्र आकलन और क्षेत्रीय रिपोर्टें बताती हैं कि कई गांव अब भी अनियमित जल आपूर्ति, सीमित उपचार क्षमता या खराब रखरखाव वाली अधोसंरचना का सामना कर रहे हैं। संचालन और रखरखाव, जो अक्सर

ग्रामीण अधोसंरचना कार्यक्रमों की सबसे कमजोर कड़ी होती है, अब भी स्थानीय संस्थाओं की तकनीकी क्षमता और वित्तीय संसाधनों पर काफी निर्भर हैं।

व्यय की प्रवृत्तियां भी क्रियान्वयन की असमान गति को उजागर करती हैं। यद्यपि 2025-26 के लिए केंद्रीय बजट में मिशन हेतु लगभग 67,000 करोड़ रुपये आवंटित किए गए थे, जो इसके पिछले वर्ष के समान ही है, लेकिन वास्तविक खर्च इससे कहीं कम रहा। 2025-26 के संशोधित अनुमान में इसे घटाकर लगभग 17,000 करोड़ रुपये कर दिया गया, जबकि 2024-25 में वास्तविक व्यय लगभग 22,615 करोड़ रुपये रहा था।

ये आंकड़े संकेत देते हैं कि क्रियान्वयन में बाधाएं, खरीद में देरी और क्षमता की सीमाएं आवंटित धन के उपयोग की गति को धीमा कर रही हैं। इस संदर्भ में, कार्यक्रम को नए सिरे से शुरू करना और उसका पुनर्गठन पहले की प्रशासनिक और परिचालन चुनौतियों को दूर करने का अवसर माना जा सकता है ताकि सार्वजनिक धन का अधिक कुशल उपयोग हो सके।

समान रूप से महत्त्वपूर्ण चिंता जल की उपलब्धता से भी जुड़ी हुई है। भारत पहले से ही दुनिया के सबसे जल संकट वाले देशों में से एक है, जहां कई क्षेत्रों को गिरते भूजल स्तर और बिगड़ती जल गुणवत्ता का सामना करना पड़ रहा है। ग्रामीण जल आपूर्ति में भूजल अब भी केंद्रीय भूमिका निभाता है। अध्ययनों से संकेत मिलता है कि ग्रामीण भारत में पेयजल की मांग का 85 फीसदी से अधिक और सिंचाई की मांग का 60 फीसदी से अधिक भूजल स्रोतों से पूरा होता है।

जल-अभाव वाले क्षेत्रों में भूजल पर बढ़ती निर्भरता दीर्घकालिक जल सुरक्षा को कमजोर कर सकती है, जब तक कि इसे सावधानीपूर्वक प्रबंधित न किया जाए। मसलन जल संग्रहण, जलग्रहण क्षेत्र विकास, वर्षा जल संचयन और वैकल्पिक सतही जल स्रोतों में समानांतर निवेश आदि के जरिये।

इन चिंताओं को धन के कुशल उपयोग के जरिये संबोधित करना इस मिशन को सतत विकास लक्ष्य 6.1 को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण बना सकता है, जिसका उद्देश्य 2030 तक सभी के लिए सुरक्षित और सस्ते पेयजल तक सार्वभौमिक पहुंच सुनिश्चित करना है, साथ ही भारत की दीर्घकालिक ग्रामीण जल सुरक्षा को मजबूत करना भी।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 13-03-26

मौजूदा माहौल में मध्य शक्तियों का मत

इयान ब्रेमर, (संस्थापक यूरेशिया ग्रुप फाउंडेशन)

अपने मित्र देशों के बीच अमेरिका अब वह मुल्क नहीं रहा, जो सामूहिक सुरक्षा, मुक्त व्यापार और कानून के शासन का समर्थक था। वहीं, चीन का आर्थिक व राजनीतिक प्रभाव लगातार बढ़ रहा है, जिससे बीजिंग से रचनात्मक संबंधों पर

निर्भर कई देशों में अविश्वास बढ़ गया है। अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था पर अमेरिका और चीन के प्रभुत्व वाले इस दौर में, और रूस द्वारा इस व्यवस्था को पलटने की प्रतिबद्धता को देखते हुए, कनाडा के प्रधानमंत्री मार्क कान ने जनवरी में चेतावनी थी कि 'मध्य शक्तियों को मिलकर काम करना चाहिए, क्योंकि यदि वे सक्रियता नहीं दिखाएंगी, तो महाशक्तियों का शिकार बन जाएंगी'।

मध्य शक्तियां उन देशों को कहा जाता है, जो महाशक्ति नहीं हैं, पर विश्व राजनीति को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं। क्या 'मध्य शक्तियां' संयुक्त राष्ट्र जैसे बहुराष्ट्रीय संस्थानों को मजबूत बना सकती हैं ? क्या वे समान हित वाले क्षेत्रों में साझेदारी कर सकती हैं? बेशक, संदेह के कई कारण हैं, पर जहां संभव है, वहां यदि वे अपनी क्षमता नहीं दिखाएंगी, तो वाशिंगटन व बीजिंग इन देशों को नुकसान पहुंचा सकते हैं।

कूटनीति की बात करें, तो यूरोपीय संघ, भारत, जापान, ब्राजील, कनाडा और इसी तरह की क्षमता वाले देश या गठबंधन संयुक्त राष्ट्र, विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व व्यापार संगठन जैसी संस्थाओं के लिए आर्थिक व राजनीतिक सहयोग बढ़ाने के लिए मिलकर काम कर सकते हैं। वे समान रणनीतियों पर एकमत हो सकते हैं, ताकि सुनिश्चित हो कि अमेरिका द्वारा हाथ खींच लेने से इन संस्थाओं का पतन नहीं होगा और चीन भी हावी न हो सकेगा।

फिलहाल नई संस्थाओं को बनाने के बजाय मौजूदा संगठनों को मजबूत करना कहीं अधिक आसान है, खासकर इसलिए, क्योंकि वाशिंगटन और बीजिंग इन शक्तियों द्वारा किए जाने वाले किसी भी प्रयास को विफल कर सकते हैं। आज भी सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता वाली मध्य शक्तियां ब्रिटेन व फ्रांस ही हैं और अमेरिका, चीन व रूस के पास सुधारों की मुखालफत करने की अधिक ताकत है।

सुरक्षा के मामले में, अमेरिका और चीन के पास सैन्य क्षमताएं काफी हैं, जिस कारण कई उभर रहे देश सैन्य समन्वय, हथियारों के विकास और खुफिया जानकारी साझा करने के मामले में उन पर निर्भर हैं। हालांकि, अपवाद भी उभर रहे हैं। यूरोप के भीतर रक्षा संबंध बढ़ रहा है, जो रूस- यूक्रेन युद्ध की प्रतिक्रिया है। हां, इसमें उसे काफी समय और धन खर्च करना पड़ेगा, साथ ही राजनीतिक इच्छाशक्ति भी दिखानी होगी।

चीन के साथ होड़, रूसी रक्षा उत्पादों की खराब गुणवत्ता और अमेरिका के लंबे समय तक भरोसेमंद साझेदार बने रह सकने पर संदेह ने भारत सरकार को यूरोप के साथ अधिक सुरक्षा व्यापार करने की ओर अग्रसर किया है। नई दिल्ली ने हाल के वर्षों में अपने रक्षा खर्च बढ़ाए भी हैं। यूरोप और कनाडा के बीच बढ़ता रक्षा सहयोग भी अमेरिकी नीतियों को लेकर उनमें बढ़ती आशंकाओं का संकेत है। जापान, दक्षिण कोरिया, सऊदी अरब और तुर्किये बतौर सुरक्षा उपाय अपनी परमाणु क्षमताएं विकसित कर सकते हैं।

आर्थिक नजरिये की बात करें, तो उभर रहे देशों के लिए व्यापार, निवेश, मानक निर्माण और विकास संबंधी निवेश के मामलों में अपने खतरे को कम करना अपेक्षाकृत आसान है, क्योंकि इसमें अमेरिका और चीन का दबदबा कम है। यह एक ऐसा क्षेत्र है, जहां प्रगति पहले से ही दिख रही है। भारत और दक्षिण अमेरिकी ब्लॉक 'मर्कोसुर के साथ हाल ही में यूरोपीय संघ ने व्यापार समझौते करके इतिहास रच दिया है। सीपीटीपीपी व्यापार समूह और यूरोपीय संघ के बीच समन्वय बनाने के लिए कनाडा का प्रयास निस्संदेह कठिन होगा, पर यदि ऐसा होता है, तो दोनों महाद्वीपों को फायदा हो सकता है। ब्राजील के पास दुर्लभ खनिजों का भंडार है और उसने सिर्फ अमेरिका नहीं, कई देशों के साथ आपूर्ति

श्रृंखला विकसित की है, जिसमें भारत का नाम भी अब जुड़ गया है। महत्वपूर्ण खनिजों से संपन्न अन्य मध्य शक्तियां भी ऐसा कर सकती हैं।

मध्य शक्तियों को अमेरिका द्वारा अपने हाल पर छोड़ देने और चीन द्वारा आर्थिक ताकत का इस्तेमाल हथियार के तौर पर करने के कारण मध्य शक्तियां सामूहिक आर्थिक सुरक्षा समझौते कर सकती हैं। ये समझौते इच्छुक सदस्यों को एकतरफा टैरिफ दबावों या व्यापार नियमों के उल्लंघन के जवाब में सहयोग बढ़ाने में मदद कर सकते हैं। हालांकि, इसके लिए मध्य शक्ति वाली तमाम सरकारों को नए समझौतों के लिए घरेलू विरोध से टकराना पड़ सकता है।

तकनीक के मामले में, मध्य शक्तियों को और भी जटिल परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। प्रौद्योगिकी व्यापार के मामले में, अमेरिका व चीन की प्रतिद्वंद्विता मध्य शक्तियों को दोनों देशों के बीच संतुलन बनाने का मौका देती है। हालांकि, तकनीकी नवाचार और उपयोग को लेकर नियम बनाने वाली बहुराष्ट्रीय संस्था नहीं है, और अत्याधुनिक तकनीकों में अमेरिकी व चीनी कंपनियों के दबदबे के कारण मध्य शक्तियों के पास अपने मत रखने की किसी विशेष शक्ति का अभाव है। ऐसे में, यूरोप, कनाडा या भारत की कंपनियां सहयोग करके खुद का संगठन बना सकती हैं और एक खुला, ताकतवर एआई 'मंच' विकसित कर सकती हैं, जो सबके लिए मुफ्त में उपलब्ध हो। हालांकि, आर्थिक और भू-राजनीतिक तनाव के इस समय में यह प्रयास महंगा और समय खर्च करने वाला साबित होगा ।

वास्तव में, मध्य शक्तियों के सामने सबसे बड़ी चुनौती यही है कि इतने अलग-अलग समूहों द्वारा विभिन्न मुद्दों पर समान हित को किस तरह आगे बढ़ाया जाए? कोई भी मध्य शक्ति, जो गैर-पश्चिमी देशों को नीति निर्माण में भागीदार बनाने के बजाय महज व्यवस्था पालक मानती है, वह खोखले गठबंधन और कमजोर संस्थाओं को ही जन्म देती है। यानी, 'ग्लोबल साउथ' की हुकूमतों के लिए कुछ मुद्दों का हल तलाशना बहुत जरूरी है, जो हैं- विकास संबंधी निवेश, कर्ज प्रबंधन, जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए आर्थिक मदद और प्रौद्योगिकी तक पहुंच ।

मध्य शक्तियां जानती हैं कि अमेरिका और चीन के प्रभुत्व से अपने हितों की सुरक्षा करने के अवसर हमेशा उपलब्ध नहीं रहेंगे। अगर वे विफल रहती हैं, तो वाशिंगटन व बीजिंग हावी हो सकते हैं। और, एक बार ऐसा हो गया, तो उनके दबदबे को रोक पाना बहुत मुश्किल हो जाएगा। हालांकि, मध्य शक्तियां ऐसा कर पाएंगी और कितना कर पाएंगी, यह अभी स्पष्ट नहीं है।